IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

बनारस की कला धर्म एवं संस्कृति

डॉ0 गुलाबधर

सहायक आचार्य, चित्रकला विभाग

ज0रा0दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ0प्र0)

कला के मूल में प्रारम्भ से ही धार्मिक भावनाओं की प्रधानता रही है। लोकगीत, लोक चित्रकला, लोककथा में धर्म के दर्शन प्रायः होते हैं। लोक चित्रकला के रूप में शैलीगत परिवर्तन बहुत कम और अत्यन्त धीरे–धीरे होता है। इसका प्रमुख कारण लोक कलाओं का धर्म के साथ गहराई के साथ जुड़ा हुआ होना है। लोक–कलाओं का धार्मिक महत्व यह भी है कि वह मानव समाज को एकता के सूत्र में बाँधती है। यह बनारस में ही नहीं बल्कि पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बिहार तक फैले भोजपुरी प्रदेश में जन स्तर तक पाई जाती है। यद्यपि बनारस में इसकी स्थानीय विशेषतायें हो सकती हैं। ऐसे अनेक उत्सव व त्यौहार होते हैं जिसको सामूहिक रूप से मनाया जाता है। धार्मिक लोककला हमारे मानवीय लोक धर्मों की रक्षा करती है। स्त्रियों द्वारा घर के अन्दर या द्वार पर अतिथियों के स्वागतार्थ रची जाने वाली रंगोली या दीवरों पर लिखी गयी आकृतियाँ अथवा व्रतों के अवसर पर इष्ट देवता की पूजा के लिए उनके द्वारा बनाई गयी मिट्टी की आकृतियाँ पर्वों या त्यौहारों पर

घर के लोगों द्वारा आम के पत्तों से बन्दनवार और तरह–तरह के फूलों से की जाने वाली घर की सजावट उनके कलात्मक पक्ष की ओर संकेत करते हैं।[1]

वस्तुओं की सजावट जिसके शादी–ब्याह, मांगलिक अवसरों आदि पर शादी के मण्डप में एक छोटा सा पेड़ रखा जाता है जिसके ऊपर बहुत से लकड़ी के सुग्गे बने रहते हैं। इस तरह के बने हुए सुग्गे ठठेरी बाजार विश्वनाथ गली और नरियरी बाजार में शादी–ब्याह के दिनों में बहुत सारी संख्या में बने हुए विकृत हैं। यह भी गाँव के बढ़ई द्वारा ही बनाया हुआ रहता है। बढ़ई के द्वारा घरों, मकानों में धरण, खम्भे, चौखट, दरवाजों पर भी अच्छी–अच्छी नक्काशियाँ तराशी जाती हैं। गाँव का लोहार भी कजरौटा, पँहसुल, चाकू, हँसुवा, सरौता पर डिजाइन बनाता है। इसके अलावा पत्थर के कोल्हू जिससे गाँवों में तेल, गन्ना पेरा जाता था उसके ऊपर भी तरह–तरह के आकर्षक घोड़े, हाथी, आदमी, स्त्री, घुड़सवार तराशे हुए मिलते हैं। जो शुद्ध रूप से लोक शैली के हैं। आज इस तरह के हजारों कोल्हू गाँवों में जगह–जगह बिखरे पड़े हैं। कारण की आधुनिक युग में मशीन द्वारा तेल की पेराई किये जाने के कारण अब ये बेकार हो गये हैं।[2]

लोककला धर्म शैली पर आधुनिकता का प्रभाव आज कल घरेलू परिवार टूटते जा रहे हैं और लोग गाँवों से शहरों में बसते जा रहे हैं। पहले घर से देवरानियों–जोठानियों का जो जमघट हाथों–हाथ सभी भूमिकायें सम्पन्न करता था, वह अब तो शादी–ब्याह के अवसरों पर भी नहीं जुट पाता है। अब परम्परागत त्यौहारों की जगह वर्क पार्टियां, लेडीज क्लब, प्रदर्शनियां, काकलेट पाटियां, पिकनिक और सबसे ज्यादा सिनेमा और टेलीविजन ने ले लिया है। आज यही सब आधुनिक लोकोत्सव है। इसलिए शहरों में रहने वाले मध्य वर्ग के परिवारों में भी लोकोत्सवों के आधार बदलते जा रहे है। अब दीपावली व अन्य त्यौहारों के

उत्सवों पर चित्र बनाना आज कल के अर्ध आधुनिक औरतों को दीवाल खराब करना लगने लगा है। फिर भी कहीं–कहीं कोई ऐसा संस्कार है जो इन त्यौहारों पर हमें कुछ न कुछ करने को अवश्य बाध्य करता है। शायद इसलिए की लोकोत्सव हम उखड़े हुए नागरिकों के लिए अपने मूल स्रोत याद दिलाने का साधन बनारस और आस–पास के सभ जगहों पर घर की औरतों द्वारा शादी–ब्याह, पर्व, तीज–त्यौहार आदि शुभ अवसरों पर विभिन्न तरीकों से चित्रकारी करने का रिवाज है।[3]

अलग–अलग प्रकार के चित्र निश्चित होते है जो आज भी उसी रूप में बनते हैं। इन चित्रों को बनाते समय अक्सर औरतें लोकगीत भी गाती है जो उन्हीं चित्रो पर पर्व त्यौहारों से सम्बन्धित होता है। ऐसा उनका विश्वास है कि अमुक प्रकार का चित्रण अमुक समय पर करने से अमुक प्रकार का कल्याण होता है। वे चित्र रचना करते समय समूचे मानव की मंगल की कामना करती है। इस तरह से बनने वाले चित्रों में हमने कोहबर, नागपंचमी, गोधना, चौक पूरना, गोधना, हाथ का थापा, दीपावली आदि और लोक धर्म कला के प्रतीक चिन्हों का विवरण है।

कोहबर, शादी के अवसर पर घर के अन्दर व बाहर और मुख्य द्वार पर जो बनाये जाते हैं उसे कोहबर कहते हैं। घर के अन्दर का कोहबर पूजने के लिए बनाया जाता है और बाहर का कोहबर सजावट तथा शुभ के लिए होता है। जिससे हाथी, घोड़ा, पुरूष, नारी, सूर्य, चन्द्र, पक्षी, फूल–पत्तियाँ आदि बनाये जाते हैं। खाली जगह पर राम–राम या सीताराम भी लिख दिया जाता है। प्रागैतिहासिक काल के शिला चित्रों में लिखनियाँ दरी गरई नदी किनारे शिलाश्रय में कोहबर व अन्य चित्र बनाये गये हैं। जो बनारस, सोनभद्र मार्ग पर स्थित है। कोबहर शब्द संस्कृत के कोष्ठवर से बना है।

कोष्ठवर विवाह के उस स्थान घर को कहते हैं जहाँ कुल देवता को स्थापित किया जाता है। आज बढ़ती आधुनिकता से प्रभावित होकर स्त्रियाँ भी अब अपने चित्रों में बाजार के रंग–बिरंगे रंगों का उपयोग करने लगी है जिनमें गुलाबी नीला, पीला मुख्य रंग हैं।

चौकपूरना हमारे देश में चौक पूरने की प्रथा प्राचीन समय से ही चली आ रही है। मांगलिक अवसरों पर गाय के गोबर से लीपना, चौक पूरना आदि आज की तरह बौद्ध काल में भी किया जाता था। रामचरित मानस में चौक पूरने का अनेक स्थानों पर वर्णन आया है।

रचहु मंण्ड मानि चौक चारू। कहहु मनावन वेगि बाजार।।

बीथी सकल सुगन्ध सिचाई। गणमनि रचि बहु चौक पुराई।।[4]

बनारस में सादी के समय जब बारात दुलहन के दरवाजे पर पहुँचती है तो सर्वप्रथम द्वार पर बने सुन्दर चौक पर दूल्हे द्वारा गणेश पूजन कराया जाता है। जिसे वहाँ पर 'द्वार पूजा' कहा जाता है। दूल्हा जब शादी के बाद घर लौटता है तो वहाँ पर दूल्हा–दुल्हन के स्वागत में दरवाजे के पास चौक पूरा जाता है। विवाह, हवन, कथा, व्रत में मण्डप बनाकर उसके अन्दर भी चौक पूरने की प्रथा है। चौक के बीच में मंगल कलश रखा जाता है। चौक के अन्दर कुल देवता की स्थापना करके उसकी पूजा होती है। अतिथि आगमन में भी द्वार पर चौक पूरने की संस्कृति है। यह कार्य मुख्य रूप से नाउन या कहारिन करती है। कहीं–कहीं पुरोहित ही चौक पूर देता है।

बनारस के इतिहास में 18वीं शदी के मध्य में एक दूसरा रूख लिया। नगर को कब्जे में करने के लिए अवध के नवाबों, अंग्रेजों और मराठों में होड़ सी लग गई। इन तीनों शक्तियों की तब तक कुछ न चली, जब एक काशी नरेश बलबन्द सिंह जीवित थे। बलवन्त सिंह के पुत्र चेत सिंह और वारेन हेस्टिंग्ज की कशमकश एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है।

चेत सिंह का अधिकार समाप्त होते ही शहर पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया पर बनारस वाले अंग्रेजों की सत्ताओं ही नही स्वीकार करने वाले थे। समय–समय पर अंग्रेजों से बराबर संघर्ष होती रही। नगर के जीवन का ढाँचा अब बहुत कुछ सुव्यवस्थित हो चुका था। 18वीं शताब्दी के अन्त और 19वीं शती के मध्य तक जो घटनायें बनारस में हुई इनमें 1957 का विद्रोह मुख्य था।

बनारस के इतिहास में वैदिक विश्वासों के साथ–साथ नाग और यक्ष पूजा का बोलबाला देखते हैं। उस युग में भी शिवपूजा अवश्य प्रचलित रही होगी। इसका विस्तार गुप्त युग से खूब था। बनारस बौद्ध धर्म का भी एक प्रधान क्षेत्र था। पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर बनारस सारनाथ तक ही सीमित था। बनारस क्षेत्र में शैव धर्म का बोलबाला था। अनेक धर्मों का अड्डा रहते हुए भी शैव धर्म की ही केन्द्र थी और अब भी है। पौराणिक साहित्य भी बनारस के शिवलिंगों से भरा है। समय की गति के अनुसार जैसे–जैसे बनारस का इतिहास बढ़ता है वैसे–वैसे शिवलिंगों की संख्या भी बढ़ती जाती है। शैव धर्म के साथ ही गंगा की भी महिमा बढ़ी। गहढवाल युग में घाटों का निर्माण हुआ।[5]

बनारस धर्म तीर्थ के साथ–साथ संस्कृति शिक्षा का एक केन्द्र थी। जातक कथाओं में यहाँ की शिक्षा प्रणाली का उल्लेख है। गुप्तकाल में यह नगर वैदिक शिक्षा की केन्द्र बन गई। गहड़वाल युग में यहाँ के पंडित शिक्षक, विद्यार्थियों को अपने यहाँ रखकर अनेक विषयों में शिक्षा देते थे। आज तक बनारस में संस्कृत की शिक्षा अवाधगति के चली आ रही है। यहाँ के पण्डितों ने अधिक प्राचीन ग्रन्थों पर टीकायें लिखी और आधुनिक दृष्टि से संस्कृत भाषा की रक्षा यहाँ के शिक्षाविद् का बड़ा सहयोग रहा है। यह उन्हीं का प्रभाव था

कि देश के कोने–कोने से विद्यार्थी बनारस आकर ज्ञानार्जन करने में अपना गौरव प्राप्त किये थे।

बनारस की महत्ता केवल तीर्थ और विद्या पर ही अवलम्बित नहीं था। बनारस में व्यापार न होता तो यह नगरी केवल आश्रम ही बनकर रह जाती और उसमें उस नगरीय संस्कृति का अभाव होता जिसके लिए बनारस आज भी विख्यात है। इस व्यापारिक महत्ता के अनेक साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाण मिले हैं। बौद्ध साहित्य में बनारस के व्यापारियों की प्रशंसा की गई है और उनके व्यापार के प्रधान अंग बनारस का सम्बन्ध है। बनारस अपनी पुरानी परम्परा को आज भी अक्षुण्ण बनाये हुए है। यहाँ के व्यापारियों ने हमेशा देश, समाज और शिक्षा की उन्नति में सहयोग दिया है।

काशी के स्थापत्य कला में बौद्ध बिहार भी अपना स्थान रखते हैं। बौद्ध भिक्षुओं के ये निवास स्थान आज खण्डहरों के रूप में विद्यमान है। इन विधाओं में सर्वविदित धर्मचक्र जिन बिहार है इस गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमार देवी ने 12वीं शदी में बनवाया था। सारनाथ में प्राप्त अन्य बिहारों के यह रचना भिन्न है। इसकी रचना दक्षिण भारत के गोपुरा के सदृश है। इसके मध्य में एक आँगन है। आँगन के तीन ओर छोटे–छोटे कमरे तथा बाहरी भाग में दो विशाल परकोटे और आगन हैं। विभिन्न धर्मों के प्रतीक मन्दिरों का वाराणसी अनुपम केन्द्र है। इस समय मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं। वे गहड़वाल शासन काल के हैं। दुर्भाग्यवश अब समूचे अवशेष नहीं बचे हैं। 10वीं शदी को कर्ममेश्वर महादेव का मन्दिर बनारस में कन्दवा ग्राम के पास तलाब के किनारे अवशिष्ट है। गृहवस्तु के उत्तम दृष्टान्त काशी में आज भी विद्यमान है। इनमें देवकी नन्दन की हवेली, काठ की हवेली, कश्मीरी लाल की हवेली तथा चेत सिंह की हवेली अत्यन्त प्रसिद्ध है।[6]

बनारस गंगा के धनुषाकार बाये तट पर स्थित भव्य दृश्यावली प्रस्तुत करता है। यह देश के अन्य भागों में केवल नदी मार्ग से ही नहीं रेलमार्ग से भी जुड़ा है। ग्रान्ड ट्रक रोड शहर के बाहरी ओर से जाती है। जो इस वर्तमान समय में सड़कों पर पूरे शहर में अच्छी चौड़ी रोड़ ब्रिज बन गये हैं। बस सेवा द्वारा भी यह सभी प्रमुख मार्गों का कायाकल्प हो गया है। बाबतपुर हवाई मार्ग से अवागमन भी सुलभ है। बनारस गंगा के किनारे–किनारे लगभग सभी मार्ग पूर्ण हैं, जो लगभग 7 किमी तक है। ऊँचाई पर बसे होने के कारण बाढ़ की विभीषिका से परे है। ठोस कंकरीली भित्ति दशाश्वमेघ के पास गोदौलिया नाले द्वारा कर गई मालूम पड़ती है। जिसके मध्य से गंगा मोटर मार्ग द्वारा सुलभ हो गयी है।

बनारस के तल रूप में प्राकृतिक स्वागत प्रभाव शहर के फैलाव पर शुरू से ही रहा है। शहर केवल ऊँची भूमि पर ही बढ़ गया है। पहले तो गंगा के आस–पास फिर चेतगंज, कचहरी मार्ग पर पश्चिम तथा उत्तर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का दक्षिण में वर्तमान विस्तार है। शहर के बीच स्थित बेनियाबाग, मैदागिन, महोदरी तलों से जल की निकासी कर उन्हें उद्यान से परिचित किया गया है। वर्तमान से शहर का खुलापन समाप्त होता जा रहा है। शहर के बड़े–बड़े तालाब को पाटकर मकान बनाये जा रहे हैं। शहर के बेनियाबाग, मैदागिन, टाउन हाल के मैदान धीरे–धीर आवासों व दुकानों में भरते जा रहे हैं। शहर के अन्दर का खुलापन समाप्त हो गया है और यह शहर भी पर्यावरण प्रदूषण से प्रभावित है।[7]

बनारस की संस्कृति हिन्दू समाज में सहस्रों वर्षों से श्रद्धा रही है। यह श्रद्धा इतनी प्रगाण थी और भी भारत वर्ष में काशी को ही सर्वाधिक पवित्र हिन्दू माना जाता रहा है और यह परम्परा पर्याप्त प्राचीन हो गयी है। सुदूर दक्षिण से काश्मीर तक तथा आसाम से गुजरात तक के सभी प्रदेशों से कष्ट सहकर लाखों यात्रा आज भी काशी की यात्रा को

आते हैं। और अपने अन्तःकरण में शान्ति तथा उल्लास का अनुभव करते हैं। बनारसी को समझने के लिए कुछ प्रचलित मान्यताओं पर भी विचार करना होगा। एक तो यह कि नगरी विश्व से अलग तीन लोक में न्यारी शंकर के त्रिशूल पर बनी है। अर्थात् अनोखी है। दूसरी मान्यता है कि बनारस महाशमशाान है। यहाँ मरने पर सामुन्य मुक्ति मिलती है। पुनर्जन्म नहीं होता है। यहाँ उत्तरवाहिनी गंगा सब पाप हर लेती है। अतः पापी भी पूर्णरूप से निश्चन्त हो जाता है। तीसरी कहावत यह है कि अर्थात् यह आशरण शरण नगरी है। जिसका कहीं ठिकाना नहीं है जो दीन–हीन अकिंचन है। वह भी इस नगर में दशाश्वमेघ पर गंगा में एक गोता मारकर अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त कर सकता हे। मणिकर्णिका कुण्ड में डुबकी लगाकर मुक्ति की दुर्लभ मणि प्राप्त कर सकता है।[8]

मान्यता ने एक विश्वास प्रदान किया है और दीनता की भावना का उन्मूलन किया है। खाक भी किस मणि का पारस है। शहर मशहूर यह बनारस है। यह बनारस की इस नगरी की मिट्टी से प्यार की साक्षी देने वाली कहावत यहाँ के संतोषी स्वभाव की चर्चा बहुत पुरानी है। गुप्तयुग में कहते थे देवी–देवी गँगा मिष्ठान युगागति वाराणस्था विशालक्षी वासः कस्य न रोचेत'' जिसका नया संस्कारण है चैना चबैना गंगा जल जो दुखे करतार काशी कबहु न छोड़िये विश्वनाथ को धाम मरने पर गंगमिले, जिते लगड़ा आम। इन भावनाओं में सन्तोष अल्प में सुख अनुभव करने और हर हालात में बनारसी का काशी से लगाव है।

जब बनारस की बात कही जाती है तब उसका मतलब पत्थरों से बने इसी गलियों वाले नगर से होता है। गलियों में आज भी कोई बड़ी सवारी प्रवेश नहीं कर सकती है। कार–रिक्शे सभी एक सीमा के बाद रूक जाते हैं। अन्तः में आदमी को अपने भरोसे ही चलना पड़ता है। उत्तर भारत के प्रमुख यात्रा पथ पर रहने की नियति उसे बराबर विदेशी

हमलावरों तथा राष्ट्र के भीतर के उथल–पुथल के सामने निराश्रित फेंक देती रही है। ऐसी स्थिति में बनारस ने एक ऐसी निजी सुरक्षात्मक चरित्र विकसित किया है जिन लोगों ने इसका नक्शा बनाया है गंगा किनारे पक्की जिसे वही से मंडित किया वे बहुत ही सावधान लोग थे। सुनियोजित तरीके से फाटक लगे थे जिन्हें जरूरत पड़ने पर संकेत मात्र के बाद किया जा सकता था। बनारस की सबसे बड़ी बनारसी साड़ियों की मण्डी इन्हीं गलियों के मूल भुलैया में स्थिति है। वाराणसी में आम लोगों के जीवन में बहुत पहले से ही चित्र घुलमिल गये थे। कोई भी पर्व हो त्यौहार हो सादी ब्याह हो घरों में चित्रकारी करवाना अनिवार्य हो गया थ। अपने घरों को सुन्दर से सुन्दर चित्रों से सजाना परम्परा बन गई थी। बनारस की चित्रकला आज भी संगीत एवं नाट्क कला का भी विकास हुआ। बनारस में रईशों व्यापारियों व आम लोगों ने इन ललित कलाओं को फूलने फलने में बहुत सहयोग दिया है। यहाँ के गणिकाओं का विशेष योगदान रहा है। यहाँ के अनेक गणिकायें प्राचीन काल से गायक नृत्य में पूरे देश में प्रसिद्ध थी।[9]

बनारस मूल स्वर से गलियों वाला शहर है। गंगा की ओर मुँह किये हुए नगर की सभी गलियाँ गंगामुखी है। आज भी गंगा किनारे से इस नगर में नंगे पाँव खुले शरीर पैदल केवल गलियों से होकर इस पार से उस पार जाया जा सकता है। आज जो भी हो कोई आँख उठाकर देखेगा नहीं। वस्त्र बनारस में आज भी अनावश्यक है। आप अच्छे–अच्छे वस्त्र में हो या लगभग नंगे हो आपके प्रति आदर भाव से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। एक नंगे देवता के शहर की यह सजधज स्वाभाविक लगती है। बनारसी बनने के लिए देशकाल धर्म की बाधा नहीं रहती है। जो भैरवनाथ के डण्डे सहकर काशी का हो गया जिससे बनारसी मिट्टी और मस्ती को सिर आँखों पर उठा लिया वही बनारसी हो गया। यह भी अनुभव

सिद्ध है। आज मँहगाई और कानून आधुनिकता और राजनीति के शिकंजे में जकड़ी बनारसी मस्ती कराहती है। बढ़ती भीड़–भाड़ में दम घुटता है। आज भी भोर होते ही कानों में घंटों घड़ियालों, भजन–कीर्तन की मधुर आवाज कानों में सुनाई पड़ती है। इसलिए कहा गया है कि यह बनारस लघु भारत है। सुश्रुत की नगरी है। दिव्यपुरी, अविमुक्तधाम है बाबा भोलेनाथ की नगरी विश्व की राजधानी है। जिसमें बहुत कुछ है जो बनारसी पान की लाली सा अदृष्ट रहता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. जसलीन धमीजा– भारत की लोककला और हस्त्रशिल्प भूमिका, पृ0सं0–2–3
2. असित कुमार हल्दर– भारतीय चित्रकला, पृ0सं0–36
3. वाचस्पति गौरोला– भारतीय चित्रकला, पृ0सं0–246
4. रामचरित मानस– अयोध्या काण्ड–617 वहीं उत्तरकाण्ड 9/3
5. उमा पाण्डेय–वाराणसी, पृ0स0–81
6. डॉ0, राम लोचन सिंह– वाराणसी एवं संक्षिप्त भौगोलिक सर्वेक्षण यह बनारस है, पृ0सं0–28
7. डॉ0 भानू शंकर मेहता– बनारसी यह बनारस है पत्रिका उलुआ, पृ0सं0–33
8. वाराणसी एक बहुत पुराना नया शहर, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ0सं0–24
9. डॉ0 मोतीचन्द– काशी का इतिहास, पृ0सं0–383